त्रिपुष्कर वाद्य कथा

लाल बाबू निराला

संगीत विभाग
चौ0चरण सिंह पी.जी. कॉलेज हैंवरा, इटावा, यू.पी. 206130

Abstract

प्रायोगिक रुप से संगीत की अभिव्यक्ति का इतिहास मानव उत्पत्ति के साथ ही प्रारम्भ हुआ था परन्तु अपने लेखनी के माध्यम से भारतीय संगीत के आधार ग्रंथ नाट्य शास्त्र के रचयिता भरत मुनि ने, संगीत को अभिव्यक्ति किया। नाट्य शास्त्र के अनुसार अवनद्ध वाद्य प्रचलित थे, जिसके आविष्कार की प्रेरणा सबसे पहले स्वाति मुनि को मिली थी। भरत नाट्य शास्त्र की रचना का समयकाल लगभग ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी से लेकर ईसा की पहली शताब्दी के बीच माना जाता है। अतः 'त्रिपुष्कर' वाद्यों का इतना प्राचीन होना निर्विवाद है।

Keywords: त्रिपुष्कर वाद्य

Published in IJIRMPS (E-ISSN: 2349-7300), Volume 6, Issue 1, Jan. – Feb. 2018

License: Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License

मानव अपने हर्ष, उल्लास, उमंग, सुख–दुख, वेदना, वात्सल्य एवं भक्ति भाव को ललित कला में श्रेष्ठ संगीत कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता रहा है। प्रायोगिक रुप से संगीत की अभिव्यक्ति का इतिहास मानव उत्पत्ति के साथ ही प्रारम्भ हुआ था परन्तु अपने लेखनी के माध्यम से भारतीय संगीत के आधार ग्रंथ नाट्य शास्त्र के रचयिता भरत मुनि ने, संगीत को अभिव्यक्ति किया। नाट्य शास्त्र के अनुसार अवनद्ध वाद्य प्रचलित थे, जिसके आविष्कार की प्रेरणा सबसे पहले स्वाति मुनि को मिली थी।

भरत नाट्य शास्त्र की रचना का समयकाल लगभग ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी से लेकर ईसा की पहली शताब्दी के बीच माना जाता है। अतः 'त्रिपुष्कर' वाद्यों का इतना प्राचीन होना निर्विवाद है।

नाट्य शास्त्र के चौतीसवें अध्याय में 'त्रिपुष्कर' के आविष्कार की कथा को इस प्रकार वर्णन किया है–

"अनाध्याए कदाचितु स्वातिर्महति दुर्दिने।
जलाशंय जगामाथ सलिलानयनं प्रति।। 4।।
तस्मिगत्र्जलाशए यावत् प्रवृतः पाक शासनः।
पतन्तीत्रिश्च धाराभिर्वायुवेगाज्जलाशए।
पुष्करिण्यां पटुः शब्दः पत्राणामगक्न्तदा।।6।।"

इसका भवार्थ इस प्रकार है कि एक बार वर्षा ऋतु में अवकाश के समय स्वाति मुनि जल के लिए तालाब पर गए। तालाब के पास पहुंचते ही वर्षा होने लगी। वायु वेग से जब जल की बूंदे गिरने से पट–पट शब्द की मनोरंजक ध्वनि उत्पन्न होने लगी, जिसे सुनकर स्वाति मुनि आश्चर्य चकित हो गए। बड़े, मध्यम व छोटे आकार के कमल पत्तों से उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की गंम्भीर व मधुर ध्वनियों को सुनकर ,उन्हे मन में धारण कर लिया और आश्रम में पहुंचने पर पुष्कर (तालाब) पर सुनी हुई ध्वनियों का ध्यान करते हुए उसी अनुसार ध्वनियों को उत्पन्न करने योग्य पुष्कर वाद्यों का पणव तथा दर्दर सहित, विश्वकर्मा की सहायता से निर्माण किया। जो आंलिग्य, ऊर्ध्वक तथा आंकिक इन तीन रूपों में मिट्टी से बनाए गए। त्रिपुष्कर के निर्माण की प्रेरणा व परिकल्पना स्वाति मुनि को पुष्करिणी से मिली थी इसलिये उन्हें पुष्कर वाद्य कहा गया है और इनके तीनों भाग 'त्रिपुष्कर' व 'पुष्करत्रय' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

पुष्कर वाद्य की उत्पत्ति संबंधित कथा से निम्न तथ्य प्रमाणित होते है–

1. पुष्कर वाद्य का निर्माण 'दुंदुभि' नामक अवनद्ध वाद्य के आधार पर किया गया।
2. छोटे, मध्यम व बड़े आकार के कमल पत्रों पर जल की बूंदे गिरने से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की ध्वनियों की अवधारणा स्वाति मुनि के मन में थी। इसलिये विभिन्न प्रकार की भारी, ऊंची, नीची, हल्की, गम्भीर व मधुर नाद उत्पन्न करने की
क्षमता वाले त्रिपुस्कर वाद्य का निर्माण किया।

3. स्वाति मुनि के मन में वर्षा के समय होने वाले मेघागर्जन की ध्वनि को भी संयुक्त करने की योजना थी। उन्होनें इस प्रकार की गम्भीर ध्वनि को भी उत्पन्न करने योग्य त्रिपुष्कर (मृदंग) को बनाया। इसका उल्लेख नाट्य शास्त्र के निम्न श्लोक से प्राप्त होता है।

मैधेश्च स्वरसंयोग मृतंगानाथासृजत। 187।।

वर्षा से जल बिंदुओ के तालाब के कमल पत्रों पर गिरने की विभिन्न ध्वनियों के अनुकरण में त्रिपुष्कर वादन के सोलह आधारभूत वर्णों (पटाक्षरों) की रचना हुई।

त्रिपुष्कर वाद्यों की महत्ता व विशेषताओं का वर्णन भरत ने इस प्रकार किया है –

यावन्ति चर्मनद्धानि ह्मातोद्यानि द्विजोन्तमाः।
तानि त्रिपुष्कराद्यानि ह्मवनद्धमिति स्मृतम् ।।
ऐतषां तु पुनर्भेदाः शतसंख्याः प्रकीर्तिताः।
किन्तु त्रिपुष्करस्यास्य लक्षणं प्रोच्यते भया।।

अवनद्ध वाद्यों की संख्या भरत नें सौ बताई है किन्तु त्रिपुष्कर के अतिरिक्त अन्य अवनद्ध वाद्यों में, जिसमें दुंदुभि भी थी, स्वर, प्रहार, अक्षर व मार्जना संयोजन की व्यवस्था नहीं थी अर्थात् इन वाद्यों को न तो निर्दिष्ट स्वर में मिलाया जा सकता था और न विविध आघातों से पटाक्षरों (बोलों) को उत्पन्न किया जा सकता था। मुख पर मढ़े चर्म में शिथिलता होने के कारण इन वाद्यों के वादन में केवल ध्वनि गाम्भीर्य मात्र था। अतः ध्वनि व वादन की दृष्टि से ये वाद्य उन्नत नहीं थे। जबकि विविध प्रकार के स्वरों, प्रहारों, अक्षरों (बोलों) व मार्जनाओं की उत्तम व्यवस्था होने के कारण, ध्वनि व वादन की दृष्टि से त्रिपुष्कर अर्थात मृदंग तथा पणव व दर्दर को 'अंग वाद्य' अर्थात मुख वाद्य और अन्य अवनद्ध वाद्यों को 'प्रत्यंगवाद्य' अर्थात गौण वाद्यों की श्रेणी में रखा गया।

कुछ लोग पणव, दर्दर व मृदंग की गणना अंग (मुख) वाद्यों में होने के कारण इन्हीं तीनों को 'त्रिपुष्कर' समझते है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, 'त्रिपुष्कर' से भरतमुनि का तात्पर्य आलिंग्य, उर्ध्वक व आंकिक ये तीनों भाग से था जो एक ही व्यक्ति द्वारा बजाए जाते थे और प्रत्येक भाग पुष्कर कहलाता था। इसे मृदंग भी कहा जाता था । मृदंग का अर्थ ' त्रिपुष्कर' (तीन पुष्कर) है इसे स्पष्ट करते हुए भरत नाट्य शास्त्र और टीका अभिनव भारती में स्पष्टतः पणव व दर्दर को उससे भिन्न बताया गया है, जैसे की निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है–

मृदङ्गानीति पुष्कराणि पणवोडन्तस्तन्त्रोको हुडुङ्कारः
दर्दुरों महाघटाकारः ।

आगे चलकर पं. शारंगदेव ने भी भरत मुनि द्वारा मृदंग शब्द का पुष्करत्रय (त्रिपुष्कर) के अर्थ में व्यवहार किया है। जिसका वर्णन संगीत रत्नाकर के छठे अध्याय के निम्न श्लोक से ज्ञात होता है–

प्रोक्तं मृदुङ्त्र शब्देन मुनिना पुष्करत्रयम्

इसके साथ–साथ नाट्य शास्त्र में रंगमंच पर उसके वादकों के बैठने के संदर्भ में मृदंग बजाने वाले मार्दगिक, पणव बजाने वाले पाणविक और दर्दर बजाने वाले दार्दरिक नाम से अलग अलग उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि त्रिपुष्कर वादक यानी मार्दगिक, पणववादक यानी पाणविक व दर्दर वादक– दार्दरिक तीनों अलग–अलग व्यक्ति थे और ये अलग–अलग वाद्य बजाते थे।

इन सभी प्रमाणों से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि त्रिपुष्कर से भरत का आशय केवल मृदंग से था और पणव व दर्दर बिल्कुल भिन्न वाद्य थे। इस युग में अवनद्ध वाद्यों में मृदंग एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाद्य था और उसी को 'पौष्कर' 'पुष्करत्रय' या त्रिपुष्कर भी कहा जाता था। मिट्टी के ढांचे का बना होने के कारण इसे 'मृदंग' ''मृत अङ्गः'' और मुलायम मिट्टी से निर्मित होने के कारण इसे 'मुरज' (सुकुमारायां मृदि प्ररोहतीति मृदपि मुरा। ततो जाता मुरजा इति मृदङ्गा इत्यर्थ :– अभिनव भारती) भी कहते थे। कालिदास ने मृदंग को मर्दल भी कहा है। मृदंग, मर्दल व मुरज को शारंगदेव ने एक ही वाद्य बताया है किन्तु वह भरत कालीन 'त्रिपुष्कर मृदंग' से ये भिन्न वाद्य था।

भरत कालीन 'त्रिपुष्कर मृदंग' के तीन भाग आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्य थे। इसकी आकृति क्रमशः हरीतकी, यवमध्य तथा गौपुच्छा के समान था। नाट्य शास्त्र व इसके अभिनव भारती टीका से कई स्थानों पर आंकिक को अंग, अंक्य या आंगिक, उर्ध्वक को उर्ध्व या ऊर्ध्वक और आलिंग्यक को आलिंग्य, आलिंग या आलिंगिक आदि नामों से इन तीनों भागों को सम्बोधित किया गया है।

अंक अर्थात् गोद में रखकर बजाने जाने वाला भाग को क्रमशः आंकिक, वाद्य मुख उर्ध्व अर्थात ऊपर आकाश की ओर मुख वाला बजाए जाने वाला भाग को उर्ध्वक और ऊर्ध्वक भाग के साथ आलिंगित भाग को आलिंग्य कहा गया था। त्रिपुष्कर वाद्यों के पाटाक्षरों के वादन से संबंधित निकास, चार मार्ग और तीन मार्जनाओं के विश्लषेण से ज्ञात होता है कि त्रिपुष्कर अर्थात् भरत कालीन मृदंग के उर्ध्वक व आलिंग्य में क्रमशः एक–एक मुख तथा आंकिक भाग में वाम (बायाँ) और दक्षिण (दाहिना) दो मुख होता है। नाट्यशास्त्र में त्रिपुष्कर के पटाक्षरों का निकास इस प्रकार बताया गया है–

कखतथभ (टढतथरा) स्तु दक्षिणमुखडत्र
धधम (धम) हाश्च वामके नियताः।
ग्ढकारे चौवोर्ध्वे (चोर्ध्वाख्ए) दठडोण–
(खठऽघ) लाः स्युरालिङ्गे।।

इस श्लोक में आंकिक का नाम न बताकर केवल उसके दाहिने और बायें मुखों पर बजाए जाने वाले पटाक्षरों को बताया है तथा उर्ध्वक एवं आलिंग्य के नाम स्पष्ट रूप से है। दक्षिण व वाम मुख का आशय आंकिक के दाहिने और बायें मुख से है, यह अभिनवगुप्त ने स्पष्ट किया है। इनके अनुसार त्रिपुष्कर वादन के चार मार्ग, आडिड्त, आलिप्त, वितस्त और गोमुखी थे। जिसमें से अडिड्त और आलिप्त मार्ग में आंकिक के वाममुख तथा वितस्त मार्ग में आंकिक के दक्षिण मुख पर प्रहार किया जाता था। उर्ध्वक आलिप्त व वितस्त मार्ग में बजाया जाता था तथा गोमुखी मार्ग में आलिंग्य भी बजाया जाता था। इससे भी आंकिक के दो मुखों का होना सिद्ध होता है। तीन मार्जनाओं में उर्ध्वक व आलिंग्य के एक–एक मुख तथा आंकिक के दक्षिण और वाम दो मुखों को स्वर में मिलाने का वर्णन है।

त्रिपुष्कर के संदर्भ में आंकिक, उर्ध्वक व आलिंग्य के बारे में अमरकोष की सत्रहवी शताब्दी की 'व्याख्यासुधा' टीका में टीकाकार भानु दीक्षित जी ने ''प्रत्येकमेंकैकम्'' लिखा है अर्थात तीनों में से प्रत्येक एक एक होता है। इससे भी प्रत्येक के अलग अलग खण्ड में आंकिक, उर्ध्वक व आलिंग्य के निर्माण होने की पुष्टि होती है। अनेक सुप्रसिद्ध स्थानों से अभी तक प्राप्त, कालक्रमानुसार विभिन्न समय पर निर्मित प्राचीन शिल्पों और भित्तिचित्रों में अंकित त्रिपुष्कर वाद्यों का विस्तृत विवरण मिलता है। इसमें से लगभग दो शताब्दी ईसा पूर्व, शुंग काल भरहुत में चित्र के अनुसार सुधर्म देवसभा में मिश्रकेशी, अलंबुषा, पदमावती और सुभद्रा नामक अप्सराओं के नृत्य के साथ वाद्यवृद में वादिका द्वारा त्रिपुष्कर वादन करते हुए दिखाया गया है। इसमें वादिका का दाहिना हाथ उर्ध्वक के मुख पर है और आलिंग्यक उसके शरीर के पीछे छिप गया है, वादिका का बायाँ हाथ आंकिक के बायें मुख पर है, आंकिक के दाहिने भाग पर कसी तिरछी बद्धियां स्पष्ट दिखाई दे रही है। इसमें वादिका की पीठ दर्शकों की ओर है। इस प्रकार प्राचीन कई शिल्पों और भित्तिचित्रों में अंकित त्रिपुष्कर वाद्यों का विस्तृत विवरण मिलता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भरत नाट्य शास्त्र (हिन्दी व्याख्या)–शुक्ला बाबू लाल ।
2. बृहस्पति आचार्य, नाट्यशास्त्र का 28वां अध्याय,
3. शुक्ला, योगमाया, तबले का उद्गम, विकास और वादन शैली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1987
4. मिश्र, लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, बी 45–47 कनाट प्लेस, नई दिल्ली, 1973
5. सेन डॉ. अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचना
6. मिस्त्री, डॉ0 आबान ई0, पखावज एवं तबले के घरानें एवं परम्परायें, पं. के0की0एस0 जिजिना स्वर साधना समिति जा एनेक्स जम्बुलवाड़ी, मुम्बई
7. मिश्र, विजय शंकर, भारतीय संगीत के नए आयाम, कनिष्क पब्लिशर्स, नइ दिल्ली।
8. त्रिपाठी डॉ. नागेश कुमार, बुन्देलखंड के संगीत में अवनद्व वाद्य (एक अध्ययन)
9. मराठे भालचंद्र, ताल वाद्य शास्त्र
10. शर्मा, भगवतशरण : भारतीय संगीत का इतिहास, प्रकाशक– संगीत कार्यालय, हाथरस